टिप्पणी

13

भारतीय न्यायिक व्यवस्था

कानूनी इतिहास अथवा न्यायिक व्यवस्था के अध्ययन में कानूनी व्यवस्था का कालक्रमानुसार विकास और वृद्धि निहित होती है। दूसरे शब्दों में यह किसी देश विशेष में प्रचलित न्यायिक प्रशासन की व्यवस्था का उसके ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में विश्लेषण शामिल होता है। यह भली भांति ज्ञात है कि न्यायिक व्यवस्था की प्रभावकारिता दो मुख्य बातों पर निर्भर करती है; जैसे कि अदालतों की एक निश्चित श्रृंखला पर जो एक सरल विधि और सुपरिभाषित कानून व्यवस्था को अपनाती है; तथा पूरे देश में समान रूप से प्रयुक्त होती है। इस प्रकार 'अदालतें' और 'कानून' न्याय के दो अति महत्वपूर्ण उपकरण हैं। केवल अच्छे कानूनों को लागू करने के माध्यम से ही न्याय के प्रशासन में निष्पक्षता रखी जा सकती है। इसलिए कानूनी इतिहास का विषय मुख्यत: 'अदालतों' और 'कानूनों की कालक्रमानुसार धीमी विकास प्रक्रिया और प्रगति से सम्बन्धित है।

यह ठीक ही कहा गया है कि कानून एक गतिशील अवधारणा है जो समय-समय पर और एक स्थान से दूसरे स्थान पर मानव के ज्ञान और सभ्यता की प्रगति के साथ समाज की जरूरतों और स्थितियों के अनुकूल होने के लिए निरन्तर बदलती और विकसित होती रहती है। मानव समाज का इतिहास बताता है कि वर्तमान की जड़े अतीत में निहित हैं। कानूनी संस्थानों के मामले में भी ऐसा ही है। वर्तमान अदालतों और कानूनों ने बरसों के प्रयोग और नियोजन के बाद वर्तमान रूप प्राप्त किया है। इसलिए भारत की वर्तमान न्यायिक व्यवस्था को समझने के लिए इसके क्रमिक विकास और प्रगति के पूर्व इतिहास को खोजना बहुत आवश्यक है।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़ने के बाद आप

- भारत की न्यायिक व्यवस्था के उद्गम तथा विकास के इतिहास को जान पाएंगे;
- भारत में न्यायपालिका के ढांचे (तन्त्र) को जान सकेंगे;
- भारत में न्यायिक व्यवस्था को पदानुक्रम पहचान सकेंगे;

- भारत के सर्वोच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार की व्याख्या कर सकेंगे;
- उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार को स्पष्ट कर पाएंगे;
- अधीनस्थ न्यायालयों की कार्यप्रणाली को समझ पाएंगे;
- भारत की वर्तमान न्यायिक व्यवस्था की त्रुटियों का आकलन कर सकेंगे; तथा
- भारत में नवीनतम न्यायिक रुझानों को चिन्हित कर सकोगे।

13.1 ब्रिटिश काल से पूर्व

प्राय: यह प्रश्न उठता है कि भारत के कानूनी इतिहास के प्रारम्भ को 1600 ई. में ब्रिटिश ईस्ट इन्डिया कम्पनी के आगमन के साथ क्यों जोड़ा जाता है। क्या इसका यह अर्थ है कि इस काल से पूर्व भारत में कोई न्यायिक व्यवस्था नहीं थी? स्पष्टत: इसका उत्तर है 'न कि यहां यह व्यवस्था बहुत पहले से थी'। भारत का कानूनी और न्यायिक इतिहास आज से 5000 वर्ष पुराना है। हमारे धर्मशास्त्रों में अच्छी तरह से स्थापित न्यायिक व्यवस्था के सन्दर्भ हैं जिनमें मानव आचरण के विभिन्न पक्षों के लिए पर्याप्त कानून हैं। उस समय कानून धर्म का ही एक हिस्सा होते थे जिनका पालन सबको करना होता था। इन कानूनों की पालना न करने पर कुछ दण्ड निश्चित थे। भारत के प्राचीन कानूनी इतिहास में हिन्दु युग के आने पर हिन्दु शासकों विशेषत: सम्राट अशोक, चन्द्रगुप्त मौर्य, हर्ष वर्धन, कनिष्क इत्यादि के शासन में दीवानी, फौजदारी और राजस्व न्याय के प्रशासन हेतु कानूनों और अदालतों की एक संगठित व्यवस्था लागू थी। हालांकि भारत में मुगलों का शासन आने पर उन्होंने अपने क्षेत्रों में न्यायिक प्रशासन के लिए अपने अलग कानून लागू किए जबकि हिन्दु साम्राज्यों में न्यायिक प्रशासन के लिए अपने कानून चलते रहे। इस प्रकार भारत में ब्रिटिश ईस्ट इन्डिया कम्पनी के आगमन से तुरन्त पूर्व भारत के विभिन्न भागों में चल रहे कानून और अदालतें अव्यवस्थित थीं और उनमें कोई एक रूपता नहीं थी क्योंकि वे मुख्यत: शासक के इशारों पर निर्भर रहती थीं, जिनकी न्याय के प्रति अपनी धारणाएं थीं जो एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न थीं। इन परिस्थितियों में 1600 ई. पूर्व की विविध न्यायिक व्यवस्थाओं और वर्तमान व्यवस्थाओं के बीच कोई सीधा सम्बन्ध स्थापित करना बहुत कठिन है। 17वीं सदी में ब्रिटिश शासन की पकड़ मजबूत होने पर यह देसी न्यायिक व्यवस्थाएं गुमनामी के अंधेरे में खो गई। मुख्य रूप से इसी कारणवश भारत में ब्रिटिश शासन से पूर्व प्रचलित देसी न्यायिक व्यवस्थाओं को भारत के कानूनी इतिहास और भारतीय न्यायिक व्यवस्था के अध्ययन क्षेत्र से बाहर रखा जाता है।

पाठगत प्रश्न 13.1

निम्नलिखित कथनों के सामने सत्य/असत्य अंकित कीजिये

1. "1600 ई. से पूर्व भारत में कोई न्यायिक व्यवस्था नहीं थी" (सत्य/असत्य)
2. धर्मशास्त्रों में एक सुस्थापित न्यायिक व्यवस्था विद्यमान थी जिसमें मानव आचरण के विभिन्न पक्षों के लिए पर्याप्त कानून थे। (सत्य/असत्य)

13.2 ब्रिटिश काल

भारतीय न्यायिक व्यवस्था के विकास अथवा भारत के कानूनी इतिहास को निम्नलिखित पक्षों के माध्यम से आसानी से समझा जा सकता है।

13.2.1 प्रथम चरण

काल क्रमानुसार भारतीय न्यायिक व्यवस्था के प्रारम्भ को एंग्लो-इन्डिया काल से जोड़ा जा सकता है जब न्यायिक व्यवस्था अपनी (प्राचीन) आदिम अवस्था में थी। ब्रिटेन से आकर बसने वालों ने अपनी पहली बस्ती सूरत में बनाई थी जो उस समय का प्रमुख व्यापार केन्द्र था। बाद में इसी प्रकार की बस्तियां बम्बई और मद्रास में भी बनीं। ब्रिटिश कम्पनी को भारत में इन तीन छोटी बस्तियों पर शासन करने का दायित्व सौंपा गया। इन बस्तियों के प्रशासन के लिए उन्होंने एक प्राथमिक न्यायिक व्यवस्था तैयार की जिसके द्वारा वे अपने आपसी झगड़े हल कर लेते थे। इस व्यवस्था की एक उल्लेखनीय विशेषता यह थी कि कानून और न्याय को लागू करने का दायित्व कानून न जानने वाले तथा गैर पेशेवर लोगों को दिया गया था जो व्यापारी समुदाय से सम्बन्ध रखते थे तथा जिन्हें न्याय और कानून की प्रक्रिया की बहुत कम जानकारी थी। सच्चाई तो यह है कि उनसे न्यायिक कार्य निभाने में अंग्रेजी कानूनों के प्रावधानों का अनुकरण करने की अपेक्षा थी। प्रेसीडेंसी शहरों में न्यायपालिका पूरी तरह से कार्यपालिका पर निर्भर थी जो उस समय भारत में ब्रिटिश कब्जे के क्षेत्रों में सर्वोच्च प्रशासनिक शक्ति थी। यह स्थिति लगभग 150 वर्ष तक चली।

13.2.2 द्वितीय चरण

भारतीय न्यायिक व्यवस्था का दूसरा चरण 1773 में ब्रिटिश पार्लियामेण्ट द्वारा पारित किए गए रेग्यूलेटिंग एक्ट के अन्तर्गत फोर्ट विलियम में सर्वोच्च न्यायालय की स्थापना से शुरू होता है जो भारत में कानूनी संस्थानों के विकास में एक ऐतिहासिक घटना मानी जाती है। यह अंग्रेजी कानूनों की अदालत थी जिसमें पेशेवर अंग्रेज न्यायाधीश थे जो कानून और कानूनी प्रथाओं से भली भांति परिचित थे। न्याय प्रदान करने हेतु अदालत में अंग्रेजों का एक विधिज्ञ वर्ग भी था। यह अदालत इग्लैण्ड की वेस्टमिन्सटर अदालत के प्रारूप पर आधारित थी। सर्वोच्च न्यायालय विधायिका और कार्यपालिका से पूरी तरह स्वतंत्र था। कुछ हद तक यह कार्यपालिका पर भी नियन्त्रण करता था और इस प्रकार इसने भारत में प्रशासनिक कार्यों पर न्यायिक नियन्त्रण के सिद्धान्त को लागू किया । इसका परिणाम यह हुआ कि कार्यपालिका की शक्तियों को बहुत कम कर दिया गया और इससे सर्वोच्च न्यायालय और सर्वोच्च परिषद में आमतौर पर टकराव होते रहे। 1781 के सेटलमेण्ट एक्ट के बाद ही परिषद को सर्वोच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार से स्वतंत्र करके कम्पनी की सरकार के दो प्रमुख संस्थानों के बीच के भेद को मिटाया गया।

13.2.3 तीसरा चरण

भारतीय न्यायिक व्यवस्था के विकास अथवा एंग्लो इन्डियन विधिक (कानूनी) इतिहास के तीसरे चरण का प्रारम्भ तब हुआ जब कम्पनी ने बंगाल में मोफसिल्स में अदालती

व्यवस्था शुरू करके न्याय व्यवस्था को स्वयं सम्भाल लिया। प्रारम्भ में अदालतों में कम्पनी के ब्रिटिश लोक सेवकों को लगाया गया जिनके पास कोई विधिक प्रशिक्षण नहीं था। प्राथमिक रूप से कम्पनी सरकार के कार्यपालिका लोक सेवक होने के नाते वे न्यायिक कार्य को कम महत्व का अर्थात गौण कार्य समझते थे। हालांकि समय के साथ नागरिक मामलों में न्यायिक कार्यों को कार्यपालिका के कार्यों से अलग किया गया जबकि आपराधिक न्याय अभी भी कार्यकारी अधिकारी कलेक्टर के पास ही था। अत: कलेक्टर-मजिस्ट्रेट ने भारत में कम्पनी की सरकार के नागरिक प्रशासन तथा आपराधिक न्याय व्यवस्था में अति महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। बाद में अदालती व्यवस्था को कम्पनी के अन्य नये अधिग्रहित क्षेत्रों में विस्तार दिया गया।

13.2.4 चौथा चरण

भारत के विधिक इतिहास का अगला चरण प्रेसीडेंसी शहरों तथा मोफ्सिल क्षेत्रों में प्रचलित अदालतों की दोहरी व्यवस्था को हाई कोर्ट्स एक्ट 1861 के अन्तर्गत हाईकोर्ट स्थापित करके एक करना था। प्रेसीडेंसी शहरों की न्यायिक व्यवस्था अनिवार्य रूप से इंग्लिश कानूनों पर आधारित थी जिसका अलग ब्रिटिश चरित्र था जबकि प्रेसीडेंसी शहरों से बाहर मोफ्सिल क्षेत्रों में हिन्दुओं और मुसलमानों के देशी कानूनों पर आधारित अदालती व्यवस्था थी। प्रेसीडेंसी शहरों की सुप्रीम कोर्ट और सदर अदालतों को समाप्त करके हाई कोर्ट की स्थापना न्यायिक व्यवस्था को सरल बनाने की दिशा में एक कदम था। इसलिए डा. एम. पी. जैन ने ठीक ही कहा है कि इन हाई कोर्ट्स को भारत में विधि की आधुनिक व्यवस्था और न्याय का अग्रदूत माना जा सकता है। शुरू में हाई कोर्ट कलकत्ता, मद्रास और बाम्बे में स्थापित किए गए जिन्हें बाद में अन्य उत्तरी और पश्चिमी प्रान्तों में भी विस्तार दिया गया।

13.2.5 पांचवा चरण

भारत में प्रिवी कोंसिल का अपील की उच्चतम अदालत के रूप में उदय भारतीय न्यायिक व्यवस्था के विकास का एक और महत्वपूर्ण चरण था। इसने भारत में एक समान प्रतिमान पर कानूनों के उचित विकास को प्रोत्साहित किया और अदालतों को न्याय देने वाली संस्था के रूप में अपने कार्यों में उच्च स्तरीय न्यायिक मानकों को लागू करने के लिए प्रेरित किया। 1833 के बाद न्यायिक प्रशासन में समानता और निश्चितता को सुनिश्चित करने के लिए पहले ला कमीशन के गठन के साथ ही भारतीय कानूनों को संहिताबद्ध करने की प्रक्रिया शुरू हुई जिसने कानूनों के विकास को अधिक स्पष्ट ढंग से प्रकट किया। दूसरे और तीसरे ला कमीशन ने भारत में प्रमुख कानूनों को संहिताबद्ध करने का काम अपने हाथ में लिया।

13.2.6 छठा चरण

भारत सरकार अधिनियम 1935 ने भारत की फेडरल कोर्ट का गठन किया जो भारतीय संविधान की व्याख्या के मामलों में हाई कोर्ट्स और प्रिवी कोंसिल के बीच मध्यस्थ अपीलीय अदालत के रूप में कार्य करने के लिए गठित की गई। इस अदालत को घोषणात्मक निर्णय के अतिरिक्त कोई अन्य निर्णय घोषित करने का अधिकार नहीं था जिसका अर्थ

था कि यह 'कानून क्या है' के विषय में तो घोषणा कर सकती थी परन्तु अपने निर्णय के अनुसार उसका पालन करवाने का कोई अधिकार नहीं रखती थी। फेडरेल कोर्ट की न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति केवल कागजी थी और इसके पास बहुत ही सीमित शक्ति थी।

13.2.7 उत्तर स्वतंत्रता काल

फेडरेल कोर्ट पर लगाई गई पाबन्दियों के बावजूद इसने 26 जनवरी 1950 तक अपना कार्य करना जारी रखा, जब भारत का संविधान लागू हुआ था। इस दौरान संविधान सभा विधि व्यवस्था और न्यायपालिका का आधारभूत ढांचा तैयार करने में जुट गई। संविधान सभा के सदस्यों ने न्यायपालिका की कल्पना अधिकारों और न्याय के संरक्षक के रूप में की। वे न्यायपालिका को सरकार के अन्य अंगों के दबाव और शक्ति से स्वतंत्र और मुक्त रखना चाहते थे। न्यायपालिका पर सप्रू कमेटी की रिपोर्ट तथा संविधान सभा की सर्वोच्च न्यायालय पर बनी एडहाक कमेटी की रिपोर्ट ने न्यायपालिका के लिए काफी दिशा निर्देश बनाए। भारत में न्यायिक व्यवस्था को आकार रूप देने में ए. के. अय्यर, के. सान्थानम, एम. ए. अंयगर, तेज बहादुर सप्रू, के. एम. मुन्शी, सदाउल्ला और डा. बी. आर. अम्बेडकर ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

ऐसा प्रतीत होता है कि एकीकृत न्यायिक व्यवस्था को बिना किसी सवाल जवाब के स्वीकार किया गया है। सर्वोच्च न्यायालय को देशभर में व्यक्तिगत अधिकारों की रक्षा का विशेष दायित्व लेना था। कदाचित अम्बेडकर संविधान सभा में इस बात के सबसे बड़े समर्थक थे कि देश की एकता को बनाए रखने के लिए संवैधानिक, दीवानी और आपराधिक कानूनों तक क्षेत्राधिकार रखने वाली तथा ऐसे सभी मामलों का उपचार प्रदान करने वाली 'एक अकेली एकीकृत न्यायपालिका' अनिवार्य है।

चित्र 13.1
डा. भीम राव अंबेडकर
अध्यक्ष, प्रारूप समिति

1947 में स्वतंत्रता के साथ ही बदली हुई परिस्थितियों के अनुकूल न्यायिक व्यवस्था में भी बदलाव करना पड़ा। प्रिवी कौंसिल का भारतीय अपीलों पर क्षेत्राधिकार 26 जनवरी 1950 को सर्वोच्च न्यायालय की स्थापना के साथ ही समाप्त हो गया। यहां उल्लेखनीय है कि भारत में स्वतंत्रता के बाद भी न्यायिक प्रशासन का तौर-तरीका न्यूनाधिक (कमोवेश) पहले जैसा ही रहा। अत: आधुनिक न्यायिक व्यवस्था अनिवार्यत: हमें अंग्रज शासकों द्वारा दी गई व्यवस्था जैसी ही है। ऐसा कहा गया है कि शायद यह व्यवस्था अंग्रेजों द्वारा दी गई सर्वश्रेष्ठ विरासत है।

वर्तमान में भारत में एक उन्नत न्यायिक व्यवस्था है जिसमें शीर्ष पर सर्वोच्च न्यायालय तथा उसके नीचे अनेक अधीनस्थ न्यायालयों की सुपरिभाषित श्रृंखला हैं। अधिकांश कानून वर्गीकृत हैं जो पूरे देश में एक समान लागू होते हैं। न्यायिक प्रशासन का प्राथमिक उद्देश्य समान लोगों को समान रूप से न्याय प्रदान करना तथा पूरे देश में कानून का शासन स्थापित करना है। हालांकि यह दु:ख की बात है कि भारतीय संविधान के अनुच्छेद 44 में विचारित समान नागरिक आचार संहिता को शहबानो केस के ऐतिहासिक निर्णय के बावजूद अभी तक लागू नहीं किया गया।

भारत का संविधान न्यायपालिका की स्वतंत्रता की अच्छी तरह रक्षा करता है तथा अपील करने के प्रावधान आम आदमी को न्याय दिलवाने के लिए उपयुक्त एवं पर्याप्त हैं।

पाठगत प्रश्न 13.2

1. "ब्रिटिश पार्लियामेण्ट द्वारा लागू किए गए 1773 के रेगूलेटिंग एक्ट को भारत में विधिक संस्थाओं के विकास में मील का पत्थर माना जाता है" क्या आप इस कथन से सहमत हैं? अपने विचार लिखिए।

13.3 आधुनिक न्यायिक व्यवस्था और अदालतों का श्रेणीबद्ध गठन

आधुनिक राष्ट्र-राज्य अनेक संस्थाओं के माध्यम से काम करते हैं। ब्रिटिश सुधारों ने वर्तमान विधायी ढांचे को रूप देने में सहायता की है। संसद, न्यायपालिका और कार्यपालिका के तंत्र जैसे अफसरशाही, पुलिस और केन्द्र-राज्यों के औपचारिक ढांचे के साथ-साथ चुनावी व्यवस्था जैसी संस्थाओं को संविधानवाद के विचार से प्रेरित हो कर गठित किया गया। उनके प्रबन्ध, निर्भरता और पारस्परिक निर्भरता को हमारे देश के सर्वोच्च राजनीतिक - विधिक दस्तावेज ने प्रत्यक्ष रूप से आकार रूप दिया है। कानूनी व्यवस्था अपने सभी अधिकार संविधान से प्राप्त करती है और पूरी राजनीतिक व्यवस्था में गहराई तक समाई हुई है। न्यायपालिका की उपस्थिति शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धान्त को सिद्ध करती है जहां अन्य दो अंग अर्थात विधायिका और कार्यपालिका इससे अलग हैं।

संसदीय लोकतन्त्र 'शक्तियों के विभाजन' के सिद्धान्त पर कार्य करता है और कानून बनाने में विधायिका और कार्यपालिका की सीधी प्रतिभागिता है। केवल न्यायपालिका ही अन्य अंगों को उनकी संविधानिक सीमा लांघने की अनुमति न देकर नागरिकों के हितों की मजबूती से रक्षा करते हुए स्वयं स्वतंत्र बनी रहती है। यह अन्य दो अंगों के कार्यों पर एक अंकुश के रूप में कार्य करती है जो अपनी शक्तियों, ढांचे और संविधान का उल्लंघन कर सकते हैं। केवल न्यायपालिका के पास ही संविधान, उसके निर्णयों और आदेशों की व्याख्या करने की शक्ति है तथा न्यायपालिका के मत की सभी अंगों द्वारा पालना की जाती है।

चित्र 13.2 भारत की संसद

भारतीय न्यायपालिका केन्द्र तथा राज्यों के न्यायालयों की एकल एकीकृत व्यवस्था है जो केन्द्र तथा राज्यों के कानूनों को लागू करती हैं तथा पूरी व्यवस्था के शीर्ष पर भारत का सर्वोच्च न्यायालय है। न्यायिक व्यवस्था की विकास यात्रा को आधुनिक राष्ट्र-राज्यों तथा संविधानवाद के विकास के माध्यम से खोजा जा सकता है।

चित्र 13.3 भारत का सर्वोच्च न्यायालय

पाठगत प्रश्न 13.3

निम्नलिखित कथनों के समक्ष सत्य/असत्य लिखिए।

1. भारतीय न्यायपालिका संघ एवं राज्यों के लिए एक एकल एकीकृत न्यायिक व्यवस्था है। (सत्य/असत्य)
2. 'विधिक व्यवस्था' संविधान से शक्ति प्राप्त करती है। (सत्य/असत्य)

13.4 न्यायपालिका का ढांचा

भारत में न्यायालयों का ढांचा एक पिरामिड की भांति है। संविधान के अन्तर्गत भारत में केन्द्र तथा राज्यों के लिए एकल एकीकृत न्यायालयों की व्यवस्था है जो केन्द्र तथा राज्यों के कानूनों के आधार पर न्याय करते हैं तथा सबसे शीर्ष पर एक सर्वोच्च न्यायालय है। सर्वोच्च न्यायालय के नीचे विभिन्न राज्यों के उच्च न्यायालय हैं और प्रत्येक उच्च न्यायालय के नीचे अधीनस्थ न्यायालय हैं जो इसके के आधीन एवं नियन्त्रण में हैं। देश में कुल 21 उच्च न्यायालय हैं और जिला स्तर पर अधीनस्थ न्यायालय हैं।

भारत का सर्वोच्च न्यायालय

भारत के संविधान के अनुच्छेद 124(1) के अन्तर्गत 28 जनवरी 1950 को राष्ट्रीय स्तर पर स्थापित सर्वोच्च न्यायालय देश का सबसे उच्च न्यायालय है। इस सन्दर्भ में अनुच्छेद 124(1) कहता है कि भारत का एक सर्वोच्च न्यायालय होगा जिसमें मुख्य न्यायाधीश के अतिरिक्त सात अन्य न्यायाधीश होगें जब तक कि संसद कानून बना कर इस संख्या में परिवर्तन नहीं करती। 2009 में किए गए संशोधन द्वारा इस संख्या को मुख्य न्यायाध ीश सहित 31 तब बढ़ा दिया गया है। सर्वोच्च न्यायालय की सारी कारवाई अंग्रेजी भाषा में होती है। सर्वोच्च न्यायालय दिल्ली में स्थित है और इसकी कार्यवाही आम जनता के लिए खुली है।

दीवानी न्यायिक व्यवस्था में क्रमबद्धता (पद सोपान)

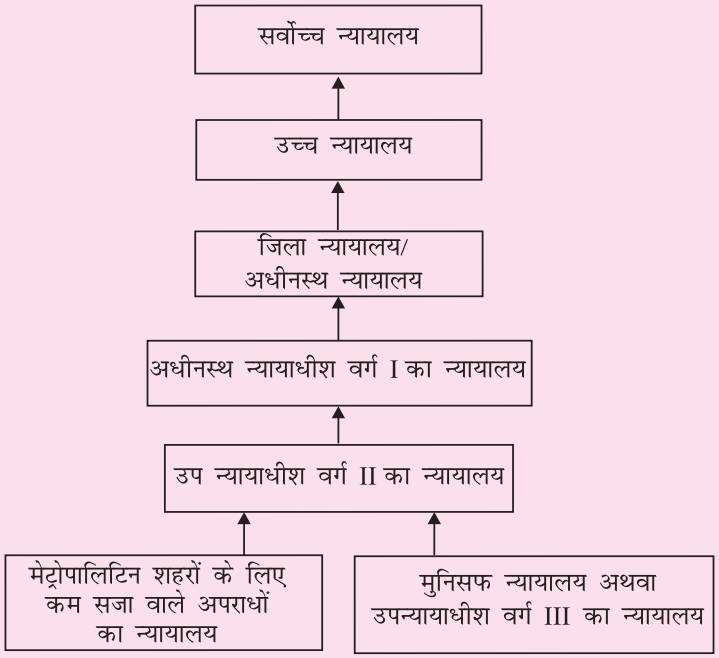

उच्च न्यायालय

किसी भी राज्य का सबसे बड़ा न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 214 के अन्तर्गत गठित उच्च न्यायालय होगा। इस समय देश में 21 उच्च न्यायालय हैं। प्रत्येक उच्च न्यायालय

में एक मुख्य न्यायाधीश तथा समय-समय पर राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किए गए अन्य न्यायाधीश होते हैं।

अधीनस्थ न्यायालय

न्यायिक व्यवस्था में अधीनस्थ न्यायालय भी आते हैं जो न्यायिक ढांचे के पहले स्तर का प्रतिनिधित्व करते हैं। एक सामान्य नियमानुसार दीवानी मामलों को एक प्रकार के न्यायालयों की श्रेणी द्वारा देखा जाता है तथा आपराधिक मामले एक अन्य न्यायालय, जिसे आपराधिक न्यायालय कहा जाता है, द्वारा देखे जाते हैं। दीवानी अदालतों (नागरिक न्यायालयों) की शक्ति सिविल प्रोसीजर कोड (नागरिक कार्यप्रणाली संहिता) द्वारा तथा आपराधिक न्यायालयों की शक्ति क्रिमीनल प्रोसीजर कोड द्वारा शासित होती है। भारत में दीवानी तथा आपराधिक न्यायालयों की क्रमबद्धता का चार्ट नीचे दिया गया है।

दीवानी एवं फौजदारी न्यायलयों की क्रमबद्धता (पद-सोपान)

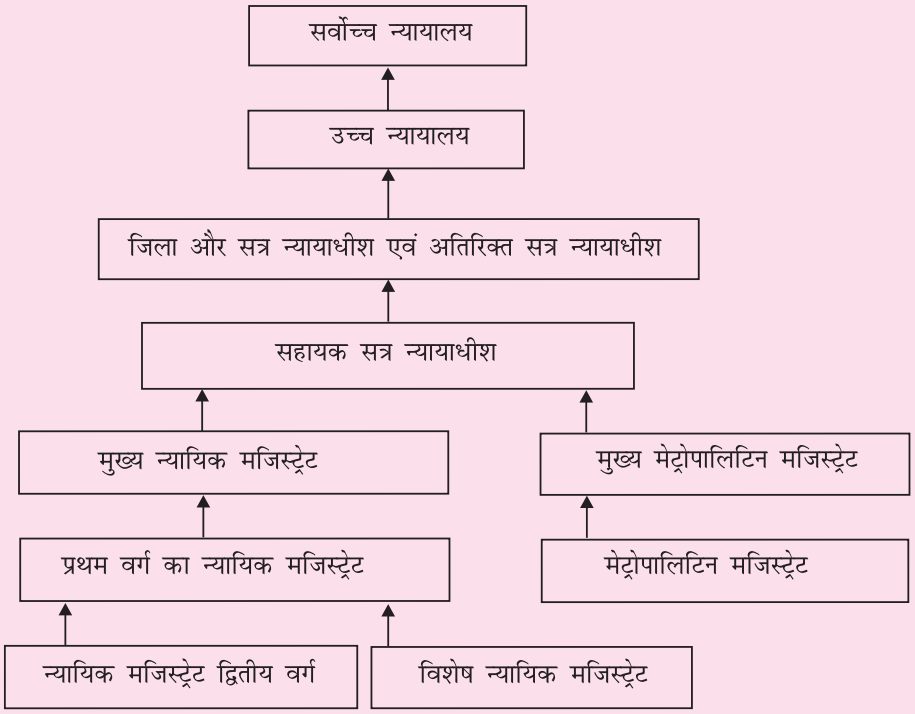

पाठगत प्रश्न 13.4

निम्नलिखित कथनों के समझ सत्य अथवा असत्य लिखिए।

1. भारतीय न्यायापालिका की प्रमुख विशेषता इसकी एकल एकीकृत न्यायिक व्यवस्था है। (सत्य/असत्य)
2. भारत में न्यायालयों का ढांचा एक पिरामिड की भांति हैं। (सत्य/असत्य)

3. 26 जनवरी 1950 को सर्वोच्च न्यायालय की स्थापना के साथ ही प्रिवी कौंसिलों का भारतीय अपीलों पर क्षेत्राधिकार समाप्त हो गया। (सत्य/असत्य)

4. भारत में सर्वोच्च न्यायालय सबसे शीर्ष न्यायालय है। (सत्य/असत्य)

13.5 सर्वोच्च न्यायालय का क्षेत्राधिकार

सर्वोच्च न्यायालय का क्षेत्राधिकार बहुत विस्तृत है और इसकी स्थिति इस कारण सुदृढ़ है कि यह एक अपीलीय न्यायालय, संविधान का रक्षक तथा अपने ही निर्णयों के समीक्षक के रूपमें कार्य करता है। संविधान का अनुच्छेद 141 कहता है कि सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून भारत के सीमा क्षेत्र में स्थित सभी न्यायालयों पर बाध्यकारी होंगे। इसके क्षेत्राधिकार को चार वर्गों में बांटा गया है।

(a) ***मूल क्षेत्राधिकार तथा याचिका क्षेत्राधिकार:*** अनुच्छेद 131 के अनुसार सर्वोच्च न्यायालय का संघ और किसी राज्य के बीच के किसी विवाद, एक राज्य का दूसरे राज्य के साथ अथवा कुछ राज्यों के एक समूह का दूसरे राज्यों के समूह के साथ किसी विवाद पर मूल क्षेत्राधिकार है। इसलिए यह एक फेडरेल कोर्ट की तरह काम करती है अर्थात विवाद से सम्बद्ध सभी पक्ष फेडरेशन की इकाई होने चाहिए। भारत में किसी अन्य न्यायालय को इस प्रकार के विवाद सुनने का अधिकार नहीं है। सर्वोच्च न्यायालय मौलिक अधिकारों का संरक्षक हैं अत: मौलिक अधिकारों के संरक्षक के रूप में इसको मौलिक अधिकारों का प्राथमिक क्षेत्राधिकार प्राप्त है। इसको बन्दी प्रत्यक्षीकरण, अधिकार पृच्छा, प्रतिषेध, उत्प्रेषण और परमादेश जैसे आज्ञा पत्र जारी करने का भी अधिकार हैं। इन आज्ञा पत्रों सहित सर्वोच्च न्यायालय को कार्यपालिका को उपयुक्त दिशा निर्देश एवं आदेश जारी करने की शक्ति प्राप्त है। संविधान का अनुच्छेद 32 संविधान के भाग III में दर्ज मौलिक अधिकारों को प्राप्त करने हेतु नागरिकों को सीधे सर्वोच्च न्यायालय में जाने का अधिकार प्रदान करता है।

(b) ***अपीलीय न्यायालय:*** सर्वोच्च न्यायालय सभी न्यायालयों के विरूद्ध अपील सुनने का उच्चतम न्यायालय है। इसके अपीलीय क्षेत्राधिकार को निम्नलिखित ढंग से विभाजित किया जा सकता है।

(i) संविधान की व्याख्या से जुड़े मामले - दीवानी, आपराधिक अथवा अन्य प्रकार के मामले

(ii) सांविधनिक प्रश्न से निरपेक्ष दीवानी मामले

(iii) सांविधानिक प्रश्न से निरपेक्ष आपराधिक मामले

अनुच्छेद 132 उच्च न्यायालय के प्रमणीकरण के आधार पर सर्वोच्च न्यायालय में अपील करने की अनुमति प्रदान करता है और सर्वोच्च न्यायालय अपील स्वीकार कर सकता है। अनुच्छेद 133 दीवानी मामलों में तथा अनुच्छेद 134 आपराधिक मामलों में सर्वोच्च न्यायालय को अपील सुनने का क्षेत्राधिकार प्रदान करता है। हालांकि सर्वोच्च न्यायालय को से किसी भी निर्णय, आदेश, दण्ड अथवा किसी भी न्यायालय अथवा ट्रिब्यूनल द्वारा पारित अथवा दिए गए निर्णय के विरूद्ध अपनी इच्छा से अपील सुनने का विशेष क्षेत्राधिकार प्राप्त है।

(c) **परामर्श का क्षेत्राधिकार:** संविधान का अनुच्छेद 143 राष्ट्रपति को कानून के किसी प्रश्न, सार्वजनिक हित के किसी तथ्य अथवा पूर्व निर्धारित सन्धियों और समझौतों से उत्पन्न विवादों से जुड़े मामलों पर सर्वोच्च न्यायालय से परामर्श मांगने की शक्ति प्रदान करता है; जो इसके मूल क्षेत्रधिकार से बाहर के मामले हैं। इस क्षेत्राधिकार में कोई कानून शामिल नहीं होता, इसका परामर्श सरकार पर बाध्यमारी नहीं है, इसको न्यायालय के निर्णय के रूप में लागू नहीं किया जा सकता और न्यायालय विवादित परिस्थितियों में जैसे बाबरी मस्जिद मामले इत्यादि में अपने परामर्श को सुरक्षित रख सकता है।

(d) **पुनरावलोकन क्षेत्राधिकार:** सर्वोच्च न्यायालय को अपने द्वारा दिए गए ऐसे किसी निर्णय तथा आदेश के विरूद्ध अनुच्छेद 137 के अन्तर्गत पुनावलोकन करने का अधि कार है जिसमें संसद द्वारा बनाए गए किसी कानून अथवा अनुच्छेद 145 के अन्तर्गत बनाए गए नियमों के प्रावधान सम्मिलित हों। हालांकि सर्वोच्च न्यायालय के क्षेत्राधि कार को संसद द्वारा बनाए गए कानून के द्वारा संघीय सूची के किसी विषय में विस्तार दिया जा सकता है। संसद कानून द्वारा सर्वोच्च न्यायालय द्वारा किए जाने वाले कार्यों और शक्तियों पर पबिन्दयां लगा सकती है। क्योंकि संसद और न्यायपालिका दोनों ही संविधान द्वारा निर्मित हैं इसलिए पूर्वोक्त कार्यों द्वारा दोनों के बीच मधुर सम्बन्ध बने रहने चाहिए और इससे संविधान का आधारभूत ढांचा नहीं बदलना चाहिए। जब कभी देश में संकटकाल घोषित किया गया हो तो यह सभी शक्तियां निरस्त अथवा दबायी जा सकती हैं।

पाठगत प्रश्न 13.5

रिक्त स्थान भरिये:

1. सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को ..... द्वारा नियुक्त किया जाता है। (प्रधानमंत्री/राष्ट्रपति/कानून मंत्री)
2. सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश ..... वर्ष की आयु के बाद सेवा निवृत होते हैं। (60/62/65)
3. दो अथवा दो से अधिक राज्यों के बीच विवाद को ..... क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष लाया जा सकता है। (मूल क्षेत्रधिकार/अपीलीय/परामर्श)
4. भारत के संविधान की व्याख्या करने का अन्तिम अधिकार ..... के पास है। (उच्च न्यायालय/सर्वोच्च न्यायालय/सत्र न्यायालय)

13.6 उच्च न्यायालय

अनुच्छेद 214 के अनुसार प्रत्येक राज्य के लिए एक उच्च न्यायालय होगा और प्रत्येक उच्च न्यायालय एक अभिलेख न्यायालय होगा और उसके पास ऐसे न्यायालय की सारी शक्तियां होगी जिनमें अपनी ही अवमानना के लिए दण्ड देने की शक्ति भी होगी। हालांकि संसद कानून बनाकर दो अथवा दो से अधिक राज्यों और एक केन्द्रशासित क्षेत्र के लिए

एक ही उच्च न्यायालय स्थापित कर सकती है। प्रत्येक उच्च न्यायालय में एक मुख्य न्यायाधीश तथा समय-समय पर नियुक्ति के लिए आवश्यक राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त न्यायाधीश होंगे। संविधान में राष्ट्रपति द्वारा अतिरिक्त न्यायाधीशों तथा कार्यकारी न्यायाधीशों की नियुक्ति के प्रावधान हैं। राष्ट्रपति न्यायाधीशों की नियुक्ति के लिए भारत के मुख्य न्यायाधीश, राज्य के राज्यपाल तथा उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश से परामर्श करेगा। उच्च न्यायालय का न्यायाधीश 62 वर्ष की आयु तक अपने पद पर बना रहता है। कोई न्यायाधीश त्यागपत्र देकर अथवा सर्वोच्च न्यायालय का न्यायाधीश नियुक्त होने पर अथवा राष्ट्रपति द्वारा किसी अन्य उच्च न्यायालय में स्थानान्तरित किए जाने पर अपना पद त्याग सकता है। राष्ट्रपति द्वारा किसी न्यायाधीश को दुराचार अथवा अक्षमता के कारण ठीक उसी प्रकार से हटाया जा सकता है जैसे सर्वोच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश को अपने पद से हटाने की एक सुनिश्चित प्रक्रिया है।

उच्च न्यायालयों का क्षेत्राधिकार

किसी राज्य के उच्च न्यायालय का क्षेत्राधिकार उस राज्य की क्षेत्रीय सीमाओं से सम्बद्ध है। उच्च न्यायालय के मूल क्षेत्राधिकार में मौलिक अधिकारों को लागू करना, केन्द्र अथवा राज्य विधायिकाओं से सम्बन्धित चुनावों के विवादों को सुलझाना तथा राजस्व से जुड़े विवाद आते हैं। इसका अपीलीय क्षेत्राधिकार दीवानी तथा आपराधिक मामलों तक फैला हुआ है। दीवानों मामलों में उच्च न्यायालय में अपील या तो पहली अपील होती है अथवा दूसरी।

आपराधिक अपीलीय क्षेत्राधिकार में निम्नलिखित निर्णयों से सम्बन्धित अपीलें होती है-

(a) किसी सत्र न्यायाधीश अथवा अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश के निर्णय के विरूद्ध जहां सजा सात वर्ष से अधिक हुई हो।

(b) छोटे मुकद्मों के अतिरिक्त केवल प्रमाणित मुकद्मों में किसी सहायक सत्र न्यायाधीश, मेट्रोपोलिटिन मजिस्ट्रट अथवा अन्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के निर्णयों के विरूद्ध

उच्च न्यायालीय द्वारा याचिका क्षेत्राधिकार का अर्थ मौलिक अधिकारों तथा सामान्य कानूनी अधिकारों को लागू करने के लिए आज्ञा पत्र जारी करना है। उच्च न्यायालय को सैनिक बलों से जुड़ी अदालतों एवं ट्रिब्यूनलों को छोड़कर अन्य अदालतों एवं ट्रिब्यूनलों पर अधीक्षण की शक्ति है। प्रभावकारी एवं तीव्र न्यायिक उपचारों के लिए यह समय-समय पर नियम बना सकता है तथा मार्ग दर्शन के लिए दिशा निर्देश जारी कर सकता है। संविधान की व्याख्या से सम्बन्धित मामलों को करने की शक्ति रखता है। संविधान की व्याख्या का अर्थ है कि प्रावधानों को लागू करने के तरीकों के लिए सही मार्गदर्शन देना। हालांकि संसद कानून बनाकर किसी उच्च न्यायालय के क्षेत्रधिकार को बढ़ा सकती है या किसी केन्द्रशासित क्षेत्र को उसके क्षेत्राधिकार से बाहर कर सकती है। उच्च न्यायालय के मूल क्षेत्राधिकार तथा अपीलीय क्षेत्राधिकार को भी द्वारा केन्द्र सरकार के अन्तर्गत सेवा करने वालों के लिए केन्द्रीय प्रशासनिक ट्रिब्यूनल बना कर सीमित किया गया हैं और इसको किसी केन्द्रीय प्रशासनिक प्राधिकरण द्वारा बनाए गए किसी केन्द्रीय एक्ट, नियम, अधिसूचना को अमान्य घोषित करने का कोई अधिकार नहीं है।

पाठगत प्रश्न 13.6

रिक्त स्थान भरिये:

1. उच्च न्यायालय के न्यायाधीश ..... द्वारा नियुक्त किए जाते हैं?
(राज्यपाल/राष्ट्रपति/प्रधानमंत्री)

2. वर्तमान में भारत में कुल ..... उच्च न्यायालय हैं। (20, 21, 18)

3. उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की सेवानिवृति की आयु ..... वर्ष है।
(60, 65, 62)

13.7 अधीनस्थ न्यायालय

न्यायालयों की क्रमबद्धता में उच्च न्यायालय के आधीन न्यायालयों को अधीनस्थ न्यायालय कहा जाता है। अधीनस्थ न्यायालयों को बनाने का कार्य राज्य सरकारों का है। इन अधीनस्थ न्यायालयों के नाम एक राज्य से दूसरे राज्य में बदल जाते हैं परन्तु सांगठनिक ढांचा लगभग एक सा ही है। प्रत्येक जिले के लिए उच्च न्यायालय के नीचे जिला न्यायालय हैं और उनके पास जिले में अपीलीय क्षेत्राधिकार है। जिला न्यायालय के अन्तर्गत निम्न स्तर के न्यायालय हैं जैसे अतिरिक्त जिला (सत्र) न्यायालय, उप न्यायालय, मुन्सिफ मजिस्ट्रेट कोर्ट, विशेष न्यायिक मजिस्ट्रेट (प्रथम वर्ग) का न्यायालय, विशेष न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वितीय वर्ग का न्यायालय, फैक्ट्रीज एक्ट और श्रम कानूनों के लिए विशेष मुन्सिफ न्यायाधीश का न्यायालय, इत्यादि। अधीनस्थ न्यायालयों के सबसे निचले स्तर पर पंचायत अदालते हैं जैसे न्याय पंचायत ग्राम पंचायत, पंचायत अदालत इत्यादि।

इन न्यायालयों को आपराधिक न्यायालय क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत नहीं माना जाता। विशेष दर्जे के अन्तर्गत जिला न्यायालय मूल मामलों को संज्ञान में ले सकता है। उच्च न्यायालय से परामर्श करके राज्यपाल जिला अदालतों में नियुक्तियां करता है। किसी राज्य की न्यायिक सेवा में जिला न्यायाधीशों के अतिरिक्त अन्य न्यायाधीशों नियुक्तियां राज्यपाल द्वारा राज्य लोक सेवा आयोग तथा उच्च न्यायालय के परामर्श पर आयोग द्वारा बनाए गए नियमों के अनुसार की जाती हैं। उच्च न्यायालय, जिला न्यायालयों तथा उनके अधीनस्थ न्यायालयों पर नियुक्ति एवं पदोन्नतियों के मामलों और राज्य न्यायिक सेवा से सम्बन्ध रखने वाले सभी व्यक्तियों को अवकाश प्रदान करने के मामले में प्रशासनिक नियन्त्रण रखता है।

पाठगत प्रश्न 13.7

1. किसी जिले मे सबसे बड़ा आपराधिक न्यायालय कौन सा होता है?

2. किसी जिले के सबसे बड़े दीवानी न्यायालय का नाम लिखिए।

13.8 प्रचलित न्यायिक व्यवस्था के दोष

भारतीय विधिक व्यवस्था के अनेक सकारात्मक पहलुओं के बावजूद न्यायिक व्यवस्था में कुछ स्पष्ट दोष हैं जिनको दूर करना आवश्यक है। उनमें से कुछ दोष निम्नलिखित है:

1. सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालय अपीलीय कार्यों के भारी बोझ तले दबे हैं जिनसे अपीलों का निपटारा करने में व्यर्थ का बिलम्ब होता है।
2. अधीनस्थ न्यायालयों के पास भी काम अधिक है। इसके अतिरिक्त उन पर कार्यपालिका का भी प्रभाव होता है जो निष्पक्ष न्याय के काम को प्रभावित करता है। दीवानी और आपराधिक मुकदमों को सम्बन्धित व्यक्तियों तथा उनके वकीलों द्वारा बार-बार बीच में रोक कर लम्बा खींचा जाता है। न्यायाधीशों की भी आम तौर पर स्थगन जारी करने की प्रवृति बन जाती है।
3. मुकदमा विशेषत: दीवानी मुकद्मा इतना महंगा मामला है कि गरीबों की पहुँच से बाहर हैं। कई बार लोग अपने जायज दावों को भी छोड़ने पर विवश होते हैं और महंगे न्याय के कारण अन्याय को सहना पसन्द करते हैं।
4. 'बार' में भ्रष्ट आचरण तथा न्यायालयों में मन्त्रियों की दखलान्दजी से कानून और न्याय के उद्देश्य को हार का सामना करना पड़ता है।
5. दलाल और पेशेवर गवाह गाहक की तलाश में अदालतों में घूमते देखे जा सकते हैं। मासूम और अनपढ़ वादी उनकी गलत चालाकियों का शिकार हो जाते हैं जिससे न्याय का काम प्रभावित होता है।
6. अनेक प्रचलित कानून सदियों पुराने हैं और बेकार तथा समय से पिछड़ गए हैं। इसलिए उनको हटाना अथवा संशोधित करना आवश्यक है। क्षति से सम्बन्धित कानून में समरूपता तथा निश्चितता लाने के लिए क्षति के कानून को अमरीका के क्षति कानून के पुर्नकथन के तरीके पर वर्गीकृत किया जाना चाहिए।

पाठगत प्रश्न 13.8

1. भारत में वर्तमान न्यायिक व्यवस्था के मुख्य दोषों की सूची बनाईये।
2. वर्तमान न्यायिक व्यवस्था के कोई तीन दोष लिखिए।

13.9 भारतीय न्यायिक व्यवस्था में नई प्रवृतियां अथवा घटनाएं

स्वतंत्रता के बाद सर्वोच्च न्यायालय भारतीय कानूनों को बदलते समाज की आवश्यकताओं को न्यायिक उद्घोषणओं के माध्यम से नया रूप देने का अनथक प्रयास कर रहा है, जिनमें से कुछ तो गत वर्षों में ऐतिहासिक महत्व प्राप्त कर चुके हैं। उल्लेख करने की दृष्टि से केशवानन्द भारती के मामले में दिया गया निर्णय जिसे मौलिक अधिकारों का मुकद्मा कहा जाता है, न्यायाधीशों के स्थानान्तरण का मुकद्मा, मेनका गांधी, हुसैनारा खातून, शाहबानो केस, एशियाड केस, डा. दास्तान केस, 12; बंगलोर जल आपूर्ति बनाम राजप्पा; नेशनल टेक्सटाइल मजदूर संघ बनाम पी. आर. रामकृष्णनन् एम. सी. मेहता बनाम

भारतीय संघ जैसे केसों के निर्णय भारत के सर्वोच्च न्यायालय की सृजनात्मक भूमिका के कुछ उदाहरण हैं।

कुछ ही समय पहले जनहित याचिका की नये रुझान से, जिसे प्रो. उपेन्द्र बक्शी सामाजिक कारवाई का मुकदमा कहना पसन्द करते हैं, न्यायिक सक्रियता और न्याय को आम आदमी के करीब ले जाने के नये क्षेत्र खुले हैं। सर्वोच्च न्यायालय और कुछ उच्च न्यायालयों ने जनहित याचिकाओं में गहरी रूचि दिखाई है जिसका उद्देश्य गरीब अभियोजकों की कठिनाइयों और मुसीबतों को कम करना है जो मुकद्मेंबाजी की परम्परागत कुव्यवस्था की मार को झेलने में असमर्थ थे तथा जिनसे केवल अमीर अभियोजकों को ही लाभ और राहत मिलती थी। गरीब और जरूरतमन्द। अभियोजकों को राहत देने के इलावा जनहित याचिकाएं कानून के प्रति सरकारी अवहेलना तथा सरकारी अधिकारियों की लापरवाही और निस्पृह प्रवृति के विरूद्ध रोक लगाने के लिए उन्हें अपने कृत्यों, गलतियों तथा मनमर्जी के लिए उत्तरदायी बनाकर प्रभावशाली ढंग से अंकुश लगाया है। बीसवीं सदी के भारत के विधिक इतिहास में यह बहुत ही सुखदायी घटना है जिसने भारत की न्यायिक व्यवस्था को पूरे भारत के लोगों के कल्याण के लिए सामाजिक न्याय का एक यंत्र बना दिया है। दीवानी, राजस्व, आपराधिक, विवाह सम्बन्धी मामलों और बीमा सम्बन्धी दावों अथवा मोटर वाहनों से हुई दुर्घटनाओं के मुकद्मों को उसी समय हल करने के लिए लोक अदालतों का बनना भारत की आधुनिक न्यायिक व्यवस्था की एक और उल्लेखनीय विशेषता है।

वास्तव में 1970 के दशक के अन्तिम वर्षों में भारत में कानूनी सहायता आन्दोलन का एक सशक्त हथियार 'जनहित याचिका' की अगले दो दशकों में पूरी तरह से मजबूत हथियार के रूप में तैयार हो गया। जनहित याचिका की उपलब्धियों तथा पहलूओं पर टिप्पणी करते हुए भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने पी. नालाथम्पी थेरा बनाम संघीय सरकार के निर्णय में हेनरी पीटर ब्रोघम से उल्लेख करते हुए कहा कि यह अगस्तटस का गरूर था कि उसे ईंटो से बना रोम मिला और उसने उसे संगमरमर का बनाकर छोड़ा। लेकिन स्वतंत्र भारत के नागरिकों की गर्वोक्ति कितनी सच होगी जब उन्हें कहना होगा कि उन्हें मंहगा कानून मिला था, जिसे सस्ता बनाया; बन्द किताब के रूप में पाया और इसको जीवन्त बना कर छोड़ा, इसको अमीरों की बपौती के रूप में पाया और गरीबों की विरासत के रूप में छोड़ा, इसको शिल्प और अभिव्याक्ती की स्वतंत्रता की दुधारी तलवार के रूप में पाया और इमानदारी तथा भोलेपन का कवच बना कर छोड़ा। जनहित याचिका न्याय प्राप्त करने में बहुत सहायक है और इससे न्यायिक सक्रियता का प्रारम्भ हुआ।

पुनः मानव अधिकारों और संविधान द्वारा प्रत्याभूत मौलिक स्वतंत्रताओं के प्रति गम्भीर रूख अपनाते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने नीलाबती बेहरा बनाम उड़ीसा राज्य केस में सरकार की संप्रभु निरापदता के दावे को ठुकराते हुए निर्णय दिया कि संप्रभु निरापदता का नियम मौलिक अधिकारों की गारंटी के सिद्धान्त से जुड़ा हुआ नहीं है और संविधानिक उपचार के रूप में इस प्रकार के बचाव का कोई प्रश्न नहीं है। न्यायालय का आगे कहना था कि सार्वजनिक कानून में गरीबों द्वारा प्रयोग करने पर उपचार अधिक शीघ्र मिलना चाहिए जिनके पास निजी कानून में निहित अपने अधिकारों को पाने के साधन नहीं है। यद्यपि इसकी कार्रवाई जहां उपयुक्त होगी वहां निजी कानूनी उपचारों के धोखे से बचने के

लिए न्यायिक रोक से प्रभावित होगी। इस मामले में न्यायालय ने अभियोजक को उसके पुत्र सुमर बेहरा की हिरासत में मौत होने पर एक लाख रूपये की क्षतिपूर्ति देने के आदेश दिए।

आधुनिक भारतीय न्यायिक व्यवस्था किसी एक व्यक्ति अथवा एक दिन की उपज नहीं है। यह अनेक योग्य प्रशासकों के निरन्तर प्रयासों और अनुभवों का परिणाम है जिन्होंने पीड़ियों तक बड़े धैर्य से मेहनत की। इस बात पर जोर देना भी जरूरी है कि विधिक इतिहास का विषय का केवल सैद्धान्तिक महत्व नहीं है अपितु यह व्यावहारिक रूप से भी अमूल्य है। न्यायपालिका ने बड़े कानूनी महत्व के मुकद्मों पर निर्णय दिए जिनसे भारत में न्यायिक संस्थानों को रूप देने में बहुत सहायता प्राप्त हुई। विशेष रूप से इस क्षेत्र में प्रिवी कौंसिल का योगदान उल्लेखनीय है क्योंकि उसके अधिकांश निर्णयों का पूर्वोदहरण के रूप में प्रयोग किया जाता है जो आज भी विश्वास पैदा करने की दृष्टि से बेशकीमती हैं।

पाठगत प्रश्न 13.9

1. जनहित याचिका का अर्थ स्पष्ट कीजिए।
2. भारतीय न्यायिक व्यवस्था में दो नई प्रवृत्तियां क्या हैं?

आपने क्या सीखा

भारत का विधिक और न्यायिक इतिहास आज से 5000 वर्ष पुराना है। कालक्रम के दृष्टिकोण से भारतीय न्यायिक व्यवस्था का आरम्भ एंग्लो इन्डिया के युग में खोजा जा सकता है जब न्यायिक व्यवस्था अपनी आदिम अवस्था में थी। भारत में भारतीय न्यायिक व्यवस्था के विकास में ब्रिटिश संसद द्वारा 1773 में लागू किये गए रेग्यूलेटिंग एक्ट को मील का पत्थर समझा जाता है।

प्रिवी कौंसित का भारतीय अपीलों पर क्षेत्राधिकार 26 जनवरी 1950 को सर्वोच्च न्यायालय स्थापित होने के साथ समाप्त हो गया।

भारतीय न्यायपालिका की प्रमुख विशेषता यहां की एकल एकीकृति न्यायिक व्यवस्था है।

भारत में न्यायालयों का ढांचा एक पिरमिड की भांति है। भारत में सर्वोच्च न्यायालय सबसे शीर्ष पर है। राज्य में सबसे बड़ा न्यायालय उच्च न्यायालय है। उसके बाद जिला, उपमण्डल और तहसील स्तर पर अधीनस्थ न्यायालय हैं।

आधुनिक भारतीय न्यायिक व्यवस्था किसी एक व्यक्ति अथवा किसी एक दिन की उपज नहीं है। यह अनेक योग्य प्रशासकों के निरन्तर प्रयासों और अनुभवों का परिणाम है जिन्होंने पीढ़ियों तक धैर्य से श्रम किया।

पाठांत प्रश्न

1. सर्वोच्च न्यायालय के मूल क्षेत्रधिकार तथा अपीलीय क्षेत्रधिकार की व्याख्या कीजिए।
2. "सर्वोच्च न्यायालय भारतीय संविधान का संरक्षक और मौलिक अधिकारों का रक्षक हैं" व्याख्या कीजिए।
3. उच्च न्यायालय के मूल एवं अपीलीय क्षेत्राधिकार का संक्षेप में वर्णन कीजिए।
5. हमारे दैनिक जीवन में जनहित याचिका के महत्व को स्पष्ट कीजिए।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

13.1

1. असत्य
2. सत्य

13.2

1. सत्य

13.3

1. सत्य
2. सत्य

13.4

1. सत्य
2. सत्य
3. सत्य
4. सत्य

13.5

1. राष्ट्रपति
2. 65 वर्ष
3. मूल
4. सर्वोच्च न्यायालय

13.6

1. राष्ट्रपति
2. 21
3. 62 वर्ष

13.7

1. जिला और सत्र न्यायाधीश
2. जिला और सत्र न्यायाधीश

13.8

1. मुख्य दोष:
   i) मुकद्मों को निपटाने में अनावश्यक विलम्ब
   ii) बार में भ्रष्ट आचरण और छोटी आदालतों में क्लर्कों के स्तर पर भ्रष्टाचार
   iii) अभियोजन बहुत मंहगा है और गरीबों की पहुंच से बाहर है
   iv) वर्तमान कानून पुराने और निरर्थक हो चुके हैं
   v) सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालय अपीलीय कामों के बोझ तले दबे हैं।

13.9

1. जनहित याचिका भारत में कानूनी सहायता आन्दोलन का एक सशक्त हथियार है। यह लोगों को शीघ्र न्याय दिलाने में काफी सहायक है। इसके परिणाम स्वरूप न्यायिक सक्रियता का दौर शुरू हुआ।
2. (i) न्यायिक सक्रियता
   (ii) जनहित याचिका (पी आई एल)